कोंकणी का यात्रा साहित्य

डॉ० चंद्रलेखा

प्रस्तुत लेख में यात्रा साहित्य की धारणा और उसकी सार्थकता पर विचार करते हुए लेखिका ने गोवा और उसके सीमावर्ती क्षेत्रों में नागरी लिपि में लिखी जाने वाली कोंकणी भाषा के यात्रा साहित्य की गंभीर विवेचना करते हुए संभावनापूर्ण परिदृश्य प्रस्तुत किया है।

मनुष्य अपने जीवन के केनवास पर अलग–अलग रेखाएँ खींचता जाता है, उस पर अपनी–अपनी रुचि के अनुसार रंग भरता जाता है, विचारों की तूलिका से उसे सजाता है, विवेक से संवारता है, अलग अलग कोणों से व्यक्त होते केलिडोस्कोपिक जीवन में अनुभवों को व्यक्त करता जाता है। जीवन घर की चारदीवारी या व्यवसाय क्षेत्र की भाग–दौड़ तक सीमित नहीं हो सकता। वह विभिन्न आकृति, प्रकृति, संस्कृति में विभिन्न भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश में फैला हुआ है। इस प्राकृतिक परिवेश में फैले जीवन को समझना हो, अनुभूत करना हो तो दीवारों के घर से बाहर, प्रकृति की गोद में विचरण करना अनिवार्य है। यह जानकारी प्रत्यक्ष दर्शन पर ही आधारित होती है। इसलिए घुमक्कड़ी शास्त्र कहता है– "मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता", घुमक्कड़ व्यक्ति जितने व्यापक स्वरूप में यात्रा करेगा उतना ही उसका अनुभव कोष समृद्ध होगा। यात्रा–

साहसिक, धार्मिक, शिक्षा संबंधी, सांस्कृतिक, नियोजित, अनियोजित कुछ भी हो सकती है। इसमें सिर्फ यात्रा वृत्तांत ही नहीं होता, यात्रास्थल का सौंदर्य, वहाँ की संस्कृति, प्रकृति, परिवेश तथा जनसंपर्क द्वारा प्राप्त अनुभूतियाँ होती हैं। ये अनुभूतियाँ स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों में प्रस्तुत हो सकती हैं, पर अगर उसे साहित्यिक कृति बनाना हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि जीवन को केंद्र में रखकर स्थूल और सूक्ष्म को समानुपाती रूप में चित्रित करें। प्रकृति वर्णन के साथ–साथ मनुष्यकृत परिवेश में भी सुंदरता की खोज करें। परिवेश के सत्य को पकड़कर उसे अपने वर्णन में ध्वनित करें।

यात्रा का वर्णन करते हुए उनकी सांस्कृतिक विरासत, वर्तमान स्थिति, सांस्कृतिकरण की जीवन संबंधी धारणाओं को समझकर उन्हें क्या दिया जा सकता है, उनसे क्या लिया जा सकता है, इसका निरूपण भी आवश्यक हो जाता है। यात्रा विवरण मनुष्यों से मनुष्यों तक होते हुए विश्वजनीनता की खोज करता दिखाई दे तभी उसकी सार्थकता सिद्ध होती है। यात्रा वर्णन कभी सूचना और विवरण प्रधान होता है, कभी प्रकृति के संपर्क से उद्भूत उल्लास की अभिव्यक्ति का होता है। कभी जीवन–दर्शन के संकेत करनेवाला होता है। कभी डायरी के रूप में लिखे गए संस्मरण के रूप में होता है और कभी व्यक्तिगत पत्रों के रूप में लिखा गया यात्रा वर्णन होता है। साहित्यिक यायावर को एक बात का ख्याल हमेशा रखना चाहिए कि अपने को केंद्र में रखकर भी प्रमुख न होने दे अन्यथा लेखक मुख्य बन जाएगा और वह यात्रा साहित्य न होकर आत्मचरित्र हो जाएगा तथा यात्रा संस्मरण न होकर आत्म संस्मरण हो जाएगा। यात्रा में प्रकृति और परिवेश के साथ उपस्थित नर–नारी, अपने अलग अलग चरित्रों में संपर्क में आते हैं। धार्मिक स्थलों, स्थापत्यों, स्मारकों, पुराने महल–खंडहर आदि से इतिहास भी झलकता रहता है। गोवा में, नागरी लिपि में लिखी जानेवाली कोंकणी में यायावर साहित्य की विधा का उपयोग बहुत कम हुआ है। जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं–

–हिमालयांत {हिमालय में} ले. रवींद्र केळेकर–1976

–गोमांचल ते हिमांचल {गोमांचल से हिमांचल} ले. दिलीप बोरबार–1989

–विवेकानंद पुरमांत {विवेकानंद पुरम् में} लेखिका सुमेधा कामत–1993

–कालीघाट ते करुणाघाट {कालीघाट से करुणाघाट} ले दत्ता दामोदर नायक–1995

–***अरेबियन डेज***–ले.दत्ता दामोदर नायक–2004

–***जपान जसा दिसला***–{मूल मराठी} ले. रवींद्र केळेकर {कोंकणी} अनु. माया खरंगटे {यंत्रस्थ}

हिमालयांत पुस्तक में लेखक लिखते हैं कि सन् 1956 में, उन्होंने हिमालय में घुमक्कड़ी की थी। जाते समय उन्होंने अपनी जेब में एक छोटी सी डायरी रखी थी, जिसमें वे रात को सोने से पहले दिन की जो यात्रा हुई हो उसकी जानकारी लिख देते थे। उसीके आधार पर सन् 1967 में ***राष्ट्रमत*** अखबार में उसे प्रकाशित किया गया था और 1976 में उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने से पहले सुधार कर लिखा गया। यात्रा के दौरान जो कुछ देखा था उसी का वर्णन उसमें किया गया है। वैसे भी यात्रा वर्णन में स्मृतियाँ ही होती हैं। ***हिमालयांत*** पुस्तक में प्रकृति वर्णन के साथ साथ लेखक की अपनी दृष्टि भी द्रष्टव्य होती है। कहीं–कहीं लेखक की आध्यात्मिक दृष्टि भी उभर आती है। जो व्यक्ति हिमालय में गंगोत्री, जमनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ की यात्रा करेगा वह आध्यात्मिक हुए बगैर कैसे रह सकता है?

"मेरी निगाहें गंगा को देख रही हैं। अपनी कौमार्य अवस्था को लांघकर सयानी होती हुई वह नाच रही थी पर अपने सयानेपन का एहसास तक उसे नहीं था। बीच–बीच में पत्थर उसकी राह रोके खड़े थे, तब अपना मार्ग बनाती वह आगे बढ़ रही थी। ..... मैं जड़ में चैतन्य तत्व को खोज रहा था. ... **ईशावास्यं इदं सर्वं यद् किंचित जगत्यां जगत्....**

इसके साथ साथ इतिहास और समाजशास्त्रीय दृष्टि की भी झलक मिलती जाती है। हमारे देश की विविधता जिसे लेखक 'भौ रूपाय' अर्थात बहुरूपी नाम से नवाजते हैं। हिमालय का प्रवास वर्णन अपने विषय से न्याय करता है। शैलीगत वर्णन की चर्चा करते समय उस पर और प्रकाश डाला जाएगा।

दूसरी कृति का नाम है ***गोमांचल ते हिमांचल***। दिल्ली यूथ हॉस्टेल, केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय और हिमाचल प्रदेश सरकार की मदद से पर्वातारोहण कार्यक्रम बनाते हैं, उसके अंतर्गत लेखक ने एक बार सिक्किम–हिमालय और दो बार पंजाब–हिमालय की घुमक्कड़ी की, उसी का वर्णन इस कृति में हुआ है। पूरी कृति में प्रवास वर्णन की सुंदरता व्याप्त है पर ऐतिहासिक, कलात्मक

और साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन व विश्लेषण दिखाई नहीं देता। यह मेरा व्यक्तिगत मत है, जिस पर बहस की जा सकती है। प्रकृति वर्णन के साथ–साथ राजकीय वर्णन तो लेखक करते हैं पर सांस्कृतिक दृष्टि का उपयोग बहुत ही कम हुआ है। ज्यादातर लेखक ने हर कोण से प्रथमवाची सर्वनाम का प्रयोग किया है। लेखक के यात्रा संस्मरण विवरणात्मक शैली में व्यक्त होते रहते हैं।

तीसरी कृति है– ***विवेकानंदपुरमांत***, जिसकी प्रस्तावना में लिखा गया है कि यह विवेकानंदपुर में प्रवास की घटनाओं का संकलन है, जिसे चाहें तो प्रवास–वर्णन भी कह सकते हैं अथवा उसे संवेदनशील मन पर अलग–अलग जगहों की प्रतिमा का प्रतिबिंब पड़ने के कारण शब्द–चित्रण भी कह सकते हैं। {पृ.7} लेखिका उसे अपनी डायरी भी कहती हैं। मेरे विचार से इस कृति में व्यक्तिगत यात्रा और अनुभव सूचनात्मक स्वरूप में व्यक्त हुए हैं। इसमें प्रकृति वर्णन तो है पर जीवन–दर्शन और सांस्कृतिक चिंतन व्यक्त नहीं होता।

चौथी कृति है– ***कालीघाट ते करुणाघाट*** जिसमें लेखक निबंधात्मक शैली में वर्णन करते जाते हैं। अलग देशों का प्रवास वर्णन जैसे–काठमांडू, लंदन, हॉलैंड, जर्मनी, स्विटज़रलैंड आदि। इस कृति में लेखक प्रथमवाची सर्वनाम 'मैं' का प्रयोग नहीं करते पर प्रसंग व प्रकृति चित्रण के अंतर्गत ही आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग करते हैं, अर्थात केंद्र स्थान पर लेखक नहीं है पर वर्णन है। 'काठमांडू' निबंध में स्वयं काठमांडू ही अपना चित्रण करता है–

"मैं जैसा हूँ वैसा ही मुझे देखो; सगे संबंधी आ रहे हैं इसलिए मैं शृंगार कर के नहीं बैठता। न ही भान–सान भुलाकर बैठता हूँ, काठमांडू गणिका नहीं है, सौभाग्यवती नहीं है, विधवा नहीं है, काठमांडू तो एक कुमारिका है। बागमती नदी के किनारे अखंड कौमार्य का व्रत लेकर बैठी हुई कुमारी देवी है। {पृ. 28}

आल्प्स और हिमालय की तुलना करते हुए वे लिखते हैं– "इतिहास के अश्रु दोनों ने बटोरे पर हिमालय ने उसे तीर्थ किया और आल्पस ने उससे खेतों का सिंचन किया और शहरों को बसाया। हिमालय के शिखर पर अध्यात्म पसरा और आल्प्स के मूल में विज्ञान पनपा।" पूर्व और पश्चिम की मूलधारा का मूलभूत तत्व उजागर करने में लेखक सफल हुए हैं। अध्ययन

प्रवृत्ति के अंतर्गत इसे प्रकृति के संपर्क से हृदय के उल्लास का वर्णन कह सकते हैं, जो कभी–कभी संस्मरणात्मक शैली में व्यक्त हुआ है।

ले.दत्ता दामोदर नायक ने एक और यात्रा वर्णन लिखा है– ***अरेबियन डेज।*** इस पुस्तक में पांच लेखों में अनुक्रम से अरबस्तान, दुबई, कुवैत का यात्रा वर्णन है, एक लेख मॉरिशस पर है, बाकी में भारत के अलग–अलग प्रदेशों का यात्रावर्णन प्रकृति की 'सायलंट सिंफनी' है ऐसा, लेखक का अनुभव है। यहाँ पर चेरापूंजी है तो ब्रह्मपुत्र भी है। केरल की सुंदरता को एक 'कॉलाज' के रूप में व्यक्त किया गया है। श्री अरविंद की ऑरोविले की ट्रॅंकवीलिटी है, साथ–साथ वहाँ के लोगों के विचार भी व्यक्त किए गए हैं! महर्षि अरविंद और माता का स्वप्न–ऑरोविले–'सिटी ऑफ डॉन'– {पृ.75} के साथ लेखक अपने तत्वज्ञानी और अध्यात्मवादी विचारों को भी व्यक्त करते जाते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में उन विचारों को बुद्धि की सान पर धरकर अपना चिंतन भी प्रकट करते जाते हैं। स्थान की यात्रा के साथ–साथ मनुष्य की मानसिक यात्रा का अनुभव भी लेखक करवा सके हैं।

जपान जसा दिसला मूळ मराठी कृति का अनुवाद कोंकणी में हो चुका है पर पुस्तक अभी मुद्रणाधीन है। कोंकणी में यात्रा साहित्य की साहित्यिक विधा अभी पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है। मेरा यह लेख सिर्फ छहः पुस्तकों को आधार बनाकर लिखा गया है। पहली पुस्तक 1976 और अंतिम 2004। इतने लंबेसमय में अगर इतना ही लिखा गया है तो इस साहित्यिक विधा का उपयोग कोंकणी साहित्यकारों ने अब तक पूर्ण रूप से किया ही नहीं है। इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की जा सकती है। इस लेखक में पहली कृति ***हिमालयांत*** जिसे रवींद्र केळेकर ने 1976 में लिखा और उनकी मराठी कृति का कोंकणी अनुवाद जापान के प्रवास को व्यक्त करता है। 'मैं' की शैली में प्रवास वर्णन जापान के इतिहास को, उनकी आर्थिक नीति को व्यक्त करता है। आधुनिकता की प्रक्रिया को अपनाते हुए भी संस्कृति को किस तरह बचाया जा सकता है, इसकी सीख हमें जापानी लोगों से लेनी होगी। यह संदेश भी महत्वपूर्ण है। हिमालय के प्रवास में लेखक आध्यात्मिक चिंतन देते हैं तो जापान के नज़ारे देखते हुए लेखक सोचते हैं कि अपनी भारतीयता को कैसे बचाया जाए, आधुनिकीकरण अनिवार्य है तो साथ–साथ

अपनी पहचान, अपनी अस्मिता बनाए रखना भी आवश्यक बनता है।

ले. दत्ता दामोदर नायक की दोनों कृतियों को छोड़कर बाकी चारों में रचनाकार की अनुभूतियाँ व्यक्तिगत रूप से अभिव्यक्त होती रही हैं। 'मैं' के साथ–साथ ही सबकुछ वर्णित होता रहता है। कहीं–कहीं प्रकृति वर्णन भी महत्वपूर्ण रूप से चित्रित हुआ है। पर ज़्यादातर केंद्र स्थान पर लेखक ही है। जबकि दत्ता नायक की दोनों कृतियों में वर्णन, इतिहास, मानवीय संदर्भ, वैज्ञानिक संदर्भों के साथ जुड़ता हुआ, अपने विचारों को आज के संदर्भ में देखता है। इस चिंतन में विरासत को समझकर आज के परिप्रेक्ष्य में उसे परखने का प्रयत्न किया गया है। काल–महाकाल की संकल्पना, उसका संदर्भ, उसकी संदर्भहीनता दोनों स्थितियों में उसका बहाव, उसका कैनवास कितना विशाल.... अनंत की कल्पना फिर भी मनुष्य कर पाता है पर अनादि...? अध्यात्म और विज्ञान तथा उसकी उपादेयता पर सोचते हुए 'चैतन्य' के बारे में रॉजर पेनरोज का अनुसंधान {पृ.75} ***अरेबियन डेज*** की अपनी विशेषता है और रचनाकार का अपना चिंतन है। महर्षि अरविंद के, ऑरोविले के दर्शन की अपनी ही विशेषता है। हर जगह पर, उस 'जगह' का चित्रण महत्वपूर्ण बना है। 'मैं' का स्थान दूसरे नंबर पर है। यात्रा वर्णन महत्वपूर्ण बनते ही रचनाकार का स्थान गौण बन जाता है, यही उसकी सफलता है।

जैसा मैंने लिखा है कि यात्रा साहित्य विधा कोंकणी में अभी पूर्ण रूप से विकसित ही नहीं हुई है और शायद इसीलिए पुस्तकों का भी अभाव ही है, पर अखबारों में आजकल इस विधा पर काफी लेख लिखे जा रहे हैं। पत्र–पत्रिकाओं में भी यात्रा साहित्य पनप रहा है। भविष्य में और कुछ नया जोड़ पाने की संभावना सामने है।

***

1557 HRD/06—7A